RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-03
March -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

भारतीय राष्ट्रवाद और किसान सभा

डॉ रंजीत कुमार

भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन का उदय और विकास का इतिहास आधुनिक भारत के इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण और रोचक अध्याय है। इस संग्राम में कृषकों की भागीदारी को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। भारतीय सामंती व्यवस्था में अनेकानेक जाति समूहों में विभाजित यह वर्ग जमींदारों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों के दमन तथा शोषण का सहज शिकार था।

उपनिवेशवाद के फलस्वरूप महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए जिनके अंतर्गत सदियों पुराने सामाजिक और आर्थिक संबंध और प्रथाएँ समाप्त हो गई और उनका स्थान नए संबंधों और प्रथाओं ने लिया। कृषि के क्षेत्र में भी नए भूमि संबंध और वर्ग संरचना निर्मित हुई। एक नए प्रकार की भूमि–व्यवस्था कायम हुई जो न तो पारंपरिक अथवा सामंती थी और न पूंजीवादी। पट्टेदार किसान और राज्य और जमीन को वास्तव में जोतने वालों के बीच इतनी बड़ी संख्या में बिचौलिए पैदा हो गए जितने भारतीय इतिहास में पहले कभी पैदा नहीं हुए थे। 1931 तक गांवों मे रहने वाले एक तिहाई लोग भूमिहीन हो गये और शेष दो तिहाई या तो पट्टेदार किसान या बटाईदार या छोटे भूस्वामी थे।[1] वास्तव में खेती करने वाले किसान की स्थिति भारी लगान अदा करने वाले पट्टेदार या बटाईदार की हो गयी जिसकी काश्त की शर्ते निरंतर प्रतिकूल होती चली गयी।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियाँ की आक्रामक क्षमता को मजबूत करने के लिए किसानों को राष्ट्र में और राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल करना चाहता था। राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों को शामिल करने के लिए राष्ट्रवादी नेतृत्व ने दो सिद्धांत अपनाएं। पहला, इस विचार का प्रतिपादन की किसानों का एक संयुक्त समूह अथवा एक सुखी परिवार है। इसका एक उद्देश्य जातीय, साम्प्रदायिक अथवा क्षेत्रीय आधार पर किसानों के विभाजन को समाप्त करना था। राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों को शामिल करने के लिए अपनाए गए दूसरे सिद्धांत का उद्देश्य किसानों में यह भावना पैदा करना था कि वे राष्ट्र के अंग है। न केवल इसलिए इस बात पर जोर दिया गया कि राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों की प्रधान भूमिका होनी चाहिए वरन यह भी कहा गया कि किसान ही राष्ट्र हैं अथवा कम–से कम उसका मुख्य अंग है। इसी कारण, राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभावपूर्ण नेता किसानों के अलग–अलग संगठनों को बनाना नापसंद करते थे। कांग्रेस के 1938 में हरिपुरा में हुए अधिवेशन में पारित प्रस्ताव में कहा गया– 'कांग्रेस ने पहले ही इस बात को पूरी तरह स्वीकार कर लिया है कि किसानों को अपने संघ बनाने का अधिकार है। तथापि यह याद रखना चाहिए कि कांग्रेस स्वयं मुख्यतः एक किसान संगठन है।'[2]

भारतीय किसान वर्ग को अपने और शेष राष्ट्र के साथ लाने के प्रयत्न तथा औचित्य क्या था, इसका सुन्दर विवेचन रजनी पाम दत्त और ए0 आर0 देसाई की रचनाओं में किया गया है। पहली बात तो यह थी कि उस काल में किसान वर्ग का मुख्य विरोध साम्राज्यवाद से था। अतः साम्राज्यवाद– विरोधी आंदोलन में किसानो की जनशक्ति का उपयोग ही नहीं किया या उसके हितों को बुर्जुआ वर्ग तथा मध्य वर्ग के अधीन नही किया, जैसा कि कुछ उपनिवेश–समर्थक नकली उन्मूलनवादियों का विचार था। दादाभाई नौरोजी और न्यायमूर्ति रानाडे से लेकर महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू तक सभी राष्ट्रीय नेताओं ने भारत के ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी को उपनिवेशवाद के और साम्राज्यवाद विरोध के संदर्भ में समझने और स्पष्ट करने का जो प्रयत्न किया वह निश्चित ही औपनिवेशिक अधिकारियों तथा साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा स्थापित करने के प्रयत्न से कहीं आगे था, कि गरीबी का उपनिवेशवाद से कोई संबंध नहीं था। वस्तुतः 19वीं सदी में स्वतः स्फुरित उग्र किसान आंदोलन के नेतृत्व का चिंतन भी इतना आगे नहीं पहुंच पाया। दूसरे, 19वीं और 20वीं सदियों के दौरान कृषि–सहित भारत के आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में एकीकरण के साथ–साथ यह भी आवश्यक हो गया था कि किसान अपने हितों के बारें में सोचें और उनके संरक्षण के लिए अखिल भारतीय दृष्टिकोण अपनाएं। इसके लिए आवश्यक था कि वे यह अनुभव करें कि वे राष्ट्र के उस विस्तृत समुदाय का अंग है जिसमें किसान वर्ग और राष्ट्र दोनों शामिल हैं। जब 1930 और 1940 के दशकों में किसान आंदोलन स्वतः विकसित हुए तब इन दोनों पक्षों को पूर्णतः स्वीकार किया गया। राष्ट्रवाद ने किसानों को जागृत किया, उन्हें अपनी आवश्यकताओं और मांगों के बारे में सचेत किया। राष्ट्रवाद से किसान आंदोनल के अपने पैरों पर खड़ा होने में, फैलने में और 1920 और 1930 के दशक में अपनी जड़ें जमाने में सहायता मिली उससे किसानों में एकता की भावना आई और आधुनिक संगठन के तरीकों की शिक्षा मिली।

राष्ट्रीय और किसान आंदोलनों के संबंध का बड़ा स्पष्ट विवरण हाल के दो लेखकों मजीद सिद्धीकी और के0 एन0 पाणिकर ने किया है। 1920–22 तक के संयुक्त प्रांत के किसान आंदोलन के अपने अध्ययनों के अंत में सिद्धीकी ने

RRIJM 2015, All Rights Reserved

लिखा है: 'किसानों के राष्ट्रीय राजनीति से जुड़ने से किसान आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलन दोनों को ही सहायता मिली। चूंकि विभिन्न अवस्थाओं में उन्होनें एक–दूसरों से सहायता ली और एक– दूसरे का सहायता दी। राजनीति से उसमें जो एकता आई उससे निचले स्तर पर आंदोलन को आंरभिक शक्ति मिला।'[3] इसी प्रकार के0 एन0 पाणिकर ने उन्नीसवीं सदी में मलाबार के किसान विद्रोहों से संबंधित अपने शोध पत्र में 1921 में किसानों के राष्ट्रीय आंदोलन में विलय का उल्लेख करके अंत में कहा: 'इस गठबंधन से किसानों में एकता की भावना आई। इससे उन्हें एक प्रभावी संगठन भी मिला।'[4]

अनेक वर्षो तक कांग्रेस एक विस्तृत भूमि व्यवस्था संबंधी कार्यक्रम विकसित नहीं कर पाई। गांधी द्वारा 1920,1930 और 1942 में चलाए गए तीनों बड़े आंदोलन ऐसा कार्यक्रम तैयार किए बिना आरंभ किए गए। गांधी और राष्ट्रवादी नेतृत्व ने अधिक से अधिक रचनात्मक कार्यक्रम के नाम से किसानों को 'मामूली राहत पहुंचाने वाले स्वावलंबन' उपायों का प्रस्ताव रखा। उन्होंने लगभग पूरा जोर स्वराज पर दिया, भूमि संबंधी परिवर्तनों का अस्पष्ट उल्लेख किया। भूस्वामियों के आधारभूत वर्गीय हितों के संरक्षक की गारंटी देकर उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में शरीक करने की बात सोची गई।

1930 के दशक में किसानों की कुछ भूस्वामी विरोधी मांगे उठाई गई और एक मामले में संयुक्त प्रांत की कांग्रेस और गांधी ने 1930 में यह मांग करके कि कब्जा प्राप्त किसानों को लगान में 50 रूपया और गैर–कब्जा प्राप्त किसानों को 90 प्रतिशत राहत दी जाए, भूस्वामियों और किसानों के बीच वास्तविक समझौते की बात की। बाद में 1931 में गांधी ने इस मांग को घटाकर क्रमशः 25 से 50 प्रतिशत राहत देने की पेशकश की। लेकिन किसानों की उग्रता के बावजूद गांधी और अखिल भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व ने इन मांगो पर जोर नहीं दिया।[5] जैसा कि एस0 गोपाल ने कहा है, अंत में गांधी जी ने 'भूस्वामियों पर दबाव डालने, अदायगी न करने की प्रत्यक्ष अपीलों, लगान में 50 प्रतिशत कटौती के प्रस्ताव और एक व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमता से कम अदायगी करने की कड़ी निंदा की।[6] यह उल्लेखनीय है कि बिहार में कांग्रेस नेतृत्व पर अधिक कड़ा नियंत्रण था। राष्ट्रवादियों ने भूस्वामियों के विरूद्ध किसानों की कोई भी बड़ी मांग नहीं उठाई। न केवल किसानों को मांगे उठाने से रोका गया, वरन् नेतृत्व ने भी स्वयं को ऐसा करने से रोका।[7]

1931 के निर्वाचनों की तैयारी में और कांग्रेस के वामपंथियों का तुष्ट करने और उनकी चुनौती को रोकने के लिए कांग्रेस नेतृत्व ने भूराजस्व, लगान, सिंचाई कर की दर और ऋण के बोझ को कम करने, सभी सामंती देनदारियों और शुल्कों को समाप्त करने, ऋण की अदायगी पर रोक लगाने अलाभकर जोतों को भू–राजस्व और लगान से छूट देने, लगान की बकाया को माफ करने, बेदखलियों को प्रतिबंधित करने, पट्टेदारी को निश्चित करने और उत्तराधिकार देने, सस्ती दर पर ऋण देने, बेगार और अवैध वसूलियों का उन्मूलन करने खेतीहर मजूदरों को निर्वाह योग्य मंजूरी देने, सहकारी कृषि को प्रोत्साहित करने और किसान संघो को मान्यता देने से संबंधित किसानों की कुल तत्कालिक मांगों को स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से उठाया।[8] लेकिन इन मांगों को मनवाने के लिए कांग्रेस ने संघर्ष, आंदोलन यहाँ तक कि प्रचार अभियान भी नहीं चलाया। इस विषय में 1931 से 1939 तक, कांग्रेस मंत्रिमंडलों का कार्य निराशाजनक रहा। उसके द्वारा बनाए गए भूमि–विधान बहुत कमजोर और अपर्याप्त थे और केवल महाजनों से ही किसानों को थोड़ी बहुत राहत दी गई।[9] सबसे बड़ी बात तो यह है कि किसान आंदोलन के प्रति उन मंत्रिमंडलों का रवैया अनुकूल नहीं था। जबकि भूस्वामियों से प्रत्येक अवस्था में मंत्रणा की गई और उन्हें सुविधाएँ दी गयी, किसान संघों द्वारा जन संघटन के माध्यम से दबाव डालने के प्रयत्नों की निंदा की गई और उन्हें प्रशासनिक और दलीय स्तर पर दबाया गया।[10]

जहां तक हमारे विश्लेषण का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि 1945–46 में कांग्रेस ने सभी बिचौलियों को समाप्त करने का लक्ष्य अवश्य अपनाया था।[11] इस लक्ष्य की वास्तविक पूर्ति भी आजादी के बाद के वर्षों में हुई लेकिन यह पूर्ति जिस तरीके से हुई वह किसान–विरोधी तरीका था। अर्द्ध–सामंतवाद और भूस्वामित्व पर आक्रमण करके उसका शनैः शनैः और अधिकांश में उन्मूलन कर दिया गया लेकिन उससे छोटे किसानों के विशाल वर्ग को कोई लाभ नहीं हुआ। यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय कांग्रेस ने, न तो आजादी के पूर्व और न आजादी के बाद सामान्य किसानों या बटाईदार या खेतीहर मजदूर को राहत दिए जाने के लिए कोई दबाव डाला। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस के विभिन्न आंदोलनों में इस वर्ग और स्तर के किसानों के हितों को ध्यान में नहीं रखा गया।

संदर्भ सूची:–

1. एस0 जे0 पटेल; 'डिस्ट्रीव्युशन ऑफ द नेशनल इनकम ऑफ इंडिया' इंडियन इकोनोमिक रिव्यु, खण्ड–3 सं0–1, 1956.
2. दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1938–39, पृष्ठ 16–17.
3. एम0 एच0 सिद्धीकी; एग्रेरियन अनरेस्ट इन नार्थ इंडिया, नयी दिल्ली 1978, पृष्ट 216–17.
4. के0 एन0 पाणिकर; पीजेण्ट रिवोल्टस इन मालाबार इन द नाइन्टींथ एण्ड ट्वेंटीथ सेंचुरीज,(ए0 आर0 देसाई(सं0), पीजेण्ट स्ट्रगल्स इन इंडिया, दिल्ली, 1979, पृ0 267.

5. एस0 गोपालः जवाहरलाल नेहरू,ए बायोग्राफी, खण्ड–1 लन्दन, 1975, पृ0 155–57.
6. वही, पृ0 157.
7. वही, पृ0 159.
8. द इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1937–39, पृ0–96–97.
9. एस0 गोपाल; उपरिलिखित, पृ0 229.
10. आर0 क्रेन; द इंडियन नेशनल कांग्रेस एंड द इंडियन एग्रेरियन प्राब्लम्स, 1919–1939, ए हिस्टोरिकल स्टडी, पी0एच0डी0 का अप्रकाशित शोध प्रबंध, भेल विश्वविद्यालय,1951, पृ0 102–108.
11. एच0डी0 मालवीय; लैण्ड रिफॉर्मस इन इंडिया, नई दिल्ली,1954, पृ0 76.

RRIJM 2015, All Rights Reserved